रूसी कहानी

इवान बूनिन

मातृभूमि से समाचार

मातृभूमि से समाचार (रूसी कहानी) : इवान बूनिन

मातृभूमि से समाचार (रूसी कहानी) : इवान बूनिन

Matribhumi Se Samachar (Russian Story) : Ivan Bunin

"और सचमुच-शाम में कृषक समिति के सभाकक्ष में बैठे हुए वोल्कोव ने मुस्कुराकर सोचा-बैठकों में जितना चित्रकला का विकास होता है उतना और कहीं नहीं! वाह, कितने मनोयोग से चित्र बना रहे हैं!

हरी मेज़ पर रोशनी के नीचे बैठे लोगों के माथे झुके हुए थे। सभी मोनोग्राम, असाधारण पार्श्वचित्र आदि तस्वीरें बना रहे थे। नौकरों द्वारा निःशब्द लायी जा रही चाय कभी-कभार व्यस्तता भंग कर रही थी। समिति के किसी सदस्य से उपाध्यक्ष की बहस कभी-कभी लोगों को सजग कर देती थी। पर सचिव ने नीरस ढंग से प्रतिवेदन पढ़ना शुरू किया तो इसने एक बार फिर लोगों को पेंसिलें पकड़ने के लिए बाध्य कर दिया। वोल्कोव जब खोई नज़रों से अध्यक्ष के सिगरेट सुलगते उजले हाथ को देख रहा था

तो उसे लगा जैसे कोई आस्तीन छू रहा हो। उसके सामने कृषि संस्थान में उसका सहयोगी और सुसज्जित कमरे में उसका सहनिवासी पॉलिश मूल का लम्बा, दुबला-पतला एवं तनिक झुका-सा व्यक्ति-स्वीदा, अपनी पुरानी वर्दी में खड़ा था।

उसने फुसफुसाकर नमस्ते की और पूछा-क्या बात हो रही है?

"चुकन्दर के परिरक्षण के प्रयोग के विषय पर तोल्वीन्स्को का प्रतिवेदन चल रहा है।" स्वीदा बैठ गया और चश्मे को पोंछते हुए उसने थकी नज़रों से वोल्कोव की ओर देखा। उसने चश्मे को ऊपर उठाया और उजाले में उसे घुमाकर देखते हुए कहा-आपका तार आया है।

-संस्थान से?- वोल्कोव ने तेज़ी से पूछा।

-पता नहीं.....

-ज़रूर संस्थान से ही होगा। -वोल्कोव बोला। और फुर्ती से पंजों के बल खड़ा हो हॉल से चल पड़ा। स्वागत कक्ष में आकर जहाँ गम्भीर रहने की कोई ज़रूरत न थी, उसने चैन की साँस ली, फुर्ती से ओवर कोट पहना और सड़क पर निकल आया।

मार्च महीने की नम हवा बह रही थी। रोशन सड़क के ऊपर अँधेरा आसमान काले, भारी शामियाने-सा लग रहा था, हिलती-डुलती गैस बत्तियों के नज़दीक दिख रहा था कि कैसे इस अभेद्य अँधेरे से एक के बाद दूसरी पाले की उजली बूंदें टपक रही थीं। वोल्कोव कॉलर को उठा, जेबों में हाथ डाल कोलतार की गीली,

चमकीली सड़क पर तेज़ी से चल पड़ा।

वह सोच रहा था – "लोग कैसी-कैसी तस्वीरें नहीं बनाते और वह भी कितने जतन से!"

अँधेरे, नम हवा और सरपट भाग रही बग्घियों की खड़खड़ाहट से उसके शान्त और उल्लसित मन को कोई परेशानी नहीं हो रही थी। तार ज़रूर संस्थान से ही आया होगा...पर अब उसकी कोई ज़रूरत नहीं है। उसे पता चल चुका था कि डेढ़ महीने बाद वह प्रायोगिक फ़ॉर्म के निदेशक का सहायक बन जाएगा, वहाँ वह अपनी सभी किताबें, वनस्पति संग्रह, संकलन, मिट्टी के नमूने आदि ले जाएगा...इन सब को फिर से व्यवस्थित करना, लगना होगा। वह कल्पना में स्पष्टतः अपने कमरे एवं स्वयं को मेज के पीछे काम की पोशाक में देख रहा था। और तब गम्भीरता से काम शुरु करेगा। -कुछ प्रायोगिक एवं कुछ शोध प्रबन्ध पर...

"उठ जाओ मक़बरों से!" मोड़ पर मुड़ते हुए वह खुशनुमा अन्दाज़ में गा उठा और किसी ठिगने आदमी से, जिसकी टोपी के नीचे से चश्मा चमक रहा था, जा टकराया।

-इवान त्रोफीमिछ?

इवान त्रोफीमिछ ने गर्मजोशी से अपनी छोटी-सी दाढ़ी ऊपर उठायी और मुस्कुराते हुए अपने ठण्डे, गीले एवं नन्हें हाथ से वोल्कोव के हाथ को भींच लिया।

-आप कहाँ से?

-कृषि समिति से।

-वोल्कोव बोला।

-क्या बात है, इतनी जल्दी?

-घरेलू परिस्थितियों के कारण। और आप?

-कार्यालय से। काम करते हैं, जनाब...

-लगता है आप शाम में भी व्यस्त रहते हैं?

-हॉअऽ, अरे नहीं, केवल वसन्त में, लक्ष्य पूरा करने की कोशिश कर रहे हैं...पर जानते हैं, काम घटिया है...घटिया भी नहीं, सच कहें तो सीधे-सीधे गया-गुज़रा...निरर्थक...

इवान त्रोफीमिछ ने जेबों में हाथ डाले और पुराने फर के बेढंगे, नन्हें कॉलर वाले अपने छोटे कोट में सिकुड़ गया।

क्यों? -वोल्कोव ने पूछा।

इवान त्रोफ़ीमिछ झल्ला गया।

-क्यों का क्या मतलब? किसी कमबख्त को इस काम से मतलब है, क्षमा कीजिए, क्या मैं पूछ सकता हूँ कि इन वज़नों-पैमानों, मीलों-धुरियों औसत गति, तमाम अधिशेष तालिकाओं एवं विभिन्न निरर्थक बातों में क्या तुक है?

-हूँ,ऽ, मान लीजिए, तुक तो है

-खाक तुक है। इवान त्रोफ़ीमिछ ज़ोर से चीख पड़ा। वोल्कोव उपेक्षापूर्वक मुस्कुराया।

-तो कहीं और चले जाइये-उसने शान्तिपूर्वक कहा।

-पर कहीं और कहाँ?

-अरे, आपके पास उपाधि है न?

-कहने भर के लिए।

-तो इससे क्या?

-तो इससे क्या? इवान त्रोफ़ीमिछ ने भौंहें ऊपर उठाते और चश्मा चमकाते हुए दुहराया। आपको लगता है कि मैं नहीं गया होता? भगवान क़सम, कहीं भी चला जाता। उत्तेजना में वोल्कोव के कोट के छोर को पकड़ कर वह बोलने लगा-आप केवल सोचते हैं। पर वोल्कोव ने उसे टोक दिया-

-फिर जाते क्यों नहीं?

-आपकी उम्र कितनी है?

-अचानक इवान त्रोफ़ीमिछ ने पूछा।

-चौबीस वर्ष पाँच महीने। पर क्यों?

-वहीं देखिए! और मेरी चालीस साल है...और सबसे बड़ी बात यह है कि मुझे कहीं भेजते ही नहीं। मैं याकूत जाति का हूँ। समझते हैं? अब लोग भूख से मर रहे हैं, जीवन्त और पवित्र काम है...समझते हैं? पवित्र! पर हम लोगों को क्या वहाँ जाने दे रहे हैं?

-मैं वैज्ञानिक हूँ और कह सकता हूँ कि गम्भीरता से अपने काम

में लगा हुआ हूँ,-वोल्कोव बोला।

-और वज़न-पैमानों में भी उतनी ही गम्भीरता से लगते?

-ज़रूर, वज़न-पैमानों में भी...ऐसे लोगों को मैं सचमुच समझ नहीं पाता...

इवान त्रोफ़ीमिछ क़रीब-करीब चिल्ला पड़ा-बहुत अच्छे, मैं अच्छी तरह से जानता हूँ, कि आप जैसे लोग बहुत-सी बातें समझ नहीं पाते! समझते हैं, जनाब, मैं अपने को बस इसी संशय से आश्वस्त करता हूँ कि आपमें से बहुतों को बुद्धि का दावा है : स्पष्ट है कि अपने आप में यह खेल...

वोल्कोव ने टोका-हम लोग तो दावा करते ही नहीं। आप कहते हैं-जाइए, मदद कीजिए। पर हम लोग “अच्छी बातों" से नहीं, विज्ञान से मदद करेंगे।

इवान त्रोफ़ीमिछ ने हाथ हिलाया।

-आप जानते हैं कि हम लोग इतना चिल्लाये वह मुस्कुराकर बोला और कसकर वोल्कोव का हाथ दबाया-आप स्वस्थ रहें!

और मुड़कर वह सिमटा, फिर कोने से आगे जा गायब हो गया।

वोल्कोव कुछ देर खड़ा सोचता रहा...और क्षण भर में ही इवान त्रोफ़ीमिछ को भुला वह और भी तेज़ी से चल पड़ा।

लपक कर वह सज्ज़ित फ़्लैटों की सीढ़ियों को पार कर गया, अपने कमरे को खोला और माचिस की रोशनी में तार को खोला।

उसमें लिखा था-"शुक्रवार, उन्नीस तारीख को भेजे जा रहे हैं।"

मेज़ पर तार के अलावा दो पत्र भी थे। उनमें से एक पर उसके बहनोई के हाथ का लिखा पता था। वोल्कोव मोमबत्ती जला सोफे पर बैठ गया और पत्र पढ़ने में मशगूल हो गया।

वह पढ़ने लगा-“प्रिय भाई दमीत्री, तुम जानते ही होगे कि हम सब जीवित और स्वस्थ हैं, तुम्हारे बारे में अवश्य ही कुछ भी मालूम नहीं। यहाँ से गये तो दो शब्द लिखकर छुट्टी कर दी। अरे भाई, ज़रा जल्दी-जल्दी लिखा करो, ईस्टर की छुट्टियों में आओगे तो? फुर्ती से जवाब दिया करो, अन्यथा बाढ़ आने ही वाली है और स्टेशन तक आने-जाने की राह भी नहीं रहेगी...

वोल्कोव ने पन्ना पलटा और पत्र का अन्तिम भाग देखने लगा-

"शहर जाना मुश्किल हो गया है। लगातार बर्फ़ीले तूफ़ान आ रहे हैं और भुखमरी काफ़ी हो रही है। हाँ, तुम्हें बहुत दिनों से लिख नहीं रहा था और तुम्हें मालूम नहीं होगा कि 'दवोनिकी' में कई लोग मर चुके हैं। भाई, हमारी फ्योदोरा गुज़र गयी, वोर्गोल्य का काना फ़ौजी और मीष्का ष्मार्योनोक भी। पहले मीष्का का बच्चा गुज़र गया और अगले ही हफ्ते खुद वह भी अकाल ज्वर से..."

वोल्कोव के हाथ से अचानक पत्र छूट गया...उसने शमादान को ठीक किया और पुनः त्रस्त एवं व्यग्र हो इन दो पंक्तियों को पढ़ा-

"...फ्योदोरा गुज़र गयीं, वोर्गोल्य का काना फ़ौजी और मीष्का

ष्मोर्योनोक भी..."

वह उठते हुए चीख़ा-ऐसा नहीं हो सकता। नहीं हो सकता! मेरा बालसखा, मीष्का...हम लोग एक साथ मछलियों के बच्चे पकड़ा करते थे...भूख मिटाने के लिए।

वोल्कोव फिर बैठ गया, मुँह बनाकर मुस्कुराया, पुनः उछला और दरवाज़े की ओर लपका। पर दरवाज़े से वह एकदम मुड़ा और तेज़ी से उँगलियाँ चटकाते और मँडराते विचारों को पकड़ने की कोशिश करते हुए कमरे में चहलकदमी करने लगा।

अख़बारों में वह पढ़ा करता था कि अमुक-अमुक जगह में लोगों को भूख से सूजन हो रही है, गाँव के गाँव भीख माँगने निकल पड़े हैं। वह भुखमरी से सताये लोगों को मदद अथवा जैसा कि उन पर छपा होता था “अकाल पीड़ितों के सहायतार्थ" तरह-तरह के संग्रह एवं पुस्तिकाएँ ख़रीदा करता था। पर भूख से सूखे ये कजानी लोग अख़बारों के पन्नों से दूर नहीं हो रहे थे। पर ये कजानी लोग नहीं थे, यह सूखकर काँटा हो गया, बीमार पड़ा और ठण्डे चूल्हे पर ख़त्म हो गया मीष्का मोर्योनोक था, जिसके साथ कभी वह सगे भाई की तरह बचपन के खटोले पर सोया करता था। तालाब में नहाते समय किलकारियाँ मारता तथा मछलियाँ पकड़ा करता था। अब वह मर गया और लोग कीचड़ में उसके ताबूत की लकड़ियों के लिए गाँव गये। मक्सोम बढ़ई ने ताबूत बनाया और उसमें उसकी बच्चे-सी दुबली-पतली काया को लिटाया। पहले ही उसके कन्धे छोटे-छोटे और चेहरा

दुबला-सा था...पर जब उसे नया उजला कफ़न पहनाये ताबूत में रख रहे थे तो वह और भी दुबला हो गया था। और अगली सुबह उस ताबूत को उथले स्लेज में डालकर गाँव के बसन्त के खेतों की ओर ले गये...

खाट के नीचे झुककर वोल्कोव ने वहाँ से लकड़ी की बड़ी सन्दूक खींची। उसमें बचपन की कई जीर्णप्राय पाठ्य पुस्तकें रखी थीं और उनके निचले जिल्द वाले भाग में वोल्कोव ने मीष्का के बनाये चित्र, टेढ़े-मेढ़े घर की चिमनी से निकलता आड़ा-तिरछा धुआँ, धुएँ-सा ही अद्भुत रूप से झुका, पूँछ वाला घोड़ा, विभिन्न दिशाओं में विचरण कर रहे कराकुल जाति के लोग और, “मिखाईल कोल्येसोव" को देखा....

इन किताबों से अभी भी मुर्गी के दड़बे की गन्ध आ रही थी। वह और मीष्का फ़ौजी साव्येली के यहाँ पढ़ने जाकर दौड़ लगाया करते थे। वहाँ लैम्प की धुंआती धुंधली रोशनी में मेज़ पर बच्चों का झुण्ड बैठा रहता था। पल-पल में दरवाज़ा चरमराता हुआ खुलता और लहरों पर तैरते से नये बच्चों के जोड़े चले आते थे। वे शोर मचाते मेज़ पर बैठ जाते और उस पर कोहनियाँ टेक बेंच के नीचे पैर हिलाते हुए एक-दूसरे से होड़ लगाते हुए पाठ याद करना शुरु कर देते।

बारीक सुर में मीष्का के गले से स्वर निकलता-"खुश हो जा, देवी माँ मेरी...खुश हो जा, देवी माँ मेरी..."

–हाँ तो मीष्का, किताब में जो लिखा है उसे पढ़ो

तो....निकीत्का, मुखिया का गुलबुल और नाटा बेटा जो बिना जैकेट लेकिन गुलूबन्द पहन बैठता था, ध्यानमग्न हो बुदबुदाता।

स्वयं गठीले बदन, गुलाबी चेहरे, सीधी माँग काढ़े, भूरे बालों वाला मुखिया कुर्सी के हत्थे से टिका और चिपका मेज़ के दूसरी ओर खड़ा रहता था।

बीच-बीच में वह गम्भीरतापूर्वक टोकता-निकीत, तू क्या पढ़ रहा है?

निकीता दृढ़तापूर्वक खखारता, उसका चेहरा लाल हो जाता और भर्राये गले से वह जवाब देता।

–याद हो गया?

-अभी नहीं।

-हाँ तो बच्चो, रुको, ज़रा ठहरो, दोगादून कहता-चलो, पहेली हल करो...और तुम लोग भी बच्चो, ऊँघो मत!

और वह शुरु करता।

-बच्चों, पाँच बूढ़े कहीं जा रहे थे, वे पाँच-पाँच बैसाखियाँ लिए हुए थे, हर बैसाखी पर पाँच-पाँच टहनियाँ थीं, हर टहनी पर पाँच-पाँच थैले थे, हर थैले पर पाँच-पाँच कचौड़ियाँ थीं। और मान लो, हर कचौड़ी पर पाँच-पाँच गौरैया थीं। बताओ, कितनी गौरैयाँ निकलेंगी?.....बोलो तो, बबुआ?

और तब कितने मज़े से बबुआ मीष्का के साथ कोने में छिप जाता और जल्दी-जल्दी फुसफुसाकर गौरेयों को तब तक गिनता

रहता जब उनके पीछे आ खड़ी हुई बावर्चिन उन दोनों को स्लेज पर घर नहीं ले जाती।

उस समय मीष्का की माँ वोल्कोव के घर रहती थी। अगर वोल्कोव के पास मीष्का को नहीं आने देते तो प्रायोगिक फॉर्म के निदेशक का वर्तमान सहायक सारी-सारी शाम बिसूरता रहता। मन्दमतित्व के कारण बरसों से मीष्का के होंठ दुखते थे और सब डरते थे कि कहीं बबुआ को छूत न लग जाये। पर मीष्का कभी-कभी हवेली के भीतर घुस ही जाता था। एक शाम वह अचानक बच्चों के कमरे से भागता हुआ आया।

हाँफ़ते हुए वह बोला-नासिलूष्का भाग गया। उसकी आँखें खुशी से चमक रही थीं। उसके शरीर से बर्फ़ और हेमन्त की ताजगी की महक आ रही थी। वह नंगे पाँव, पेट पर फटी क़मीज़ और छोटी पैण्ट पहने बर्फ की ढेरियों के बीच उड़-सा रहा था। कालिख पुते, फटे-चिटे कपड़ों वाले उस लड़के को धाईं असन्तोष से देख रही थी। पर जैसे ही वह प्रकट हुआ मीत्या ने किलकारी मारी और ज़िद पकड़ ली कि मीष्का उस रात कमरे में ही रहे। सारी शाम वे बिस्तर पर खेलते, जान-बूझकर शरारती बनते, चारों ओर ताकते और तस्वीरें काटते रहते....

वोल्कोव सोचने लगा-ऐसा कैसे हुआ, ऐसा हो कैसे सकता है-भुखमरी से मौत?

एक दिन गर्मी में उसे बिना स्प्रिंग वाली गाड़ी में शहर, स्कूल ले जाया गया। मीष्का उसे खलिहान के उस पार ही देख पाया।

उससे विदाई की आस में वह सुबह से ही गाँजे के खेत में बैठा रहा। घर के भीतर जहाँ काफ़ी चहल-पहल थी, माँ उसे घुसने नहीं दे रही थी...और जब मीत्या ने एकदम उदासीन भाव से उससे विदा ली तो वह मुड़ा, रो पड़ा, एक हाथ से पाजामे को पकड़े खाली पैर गर्म रेत पर चुपचाप मेड़ों से गाँव की ओर चल पड़ा...मीत्या तो आगे की ओर देख रहा था, उसके ख्याल नयी टोपी में उलझे हुए थे...

जब वह विद्यालय में काग़ज़ातों एवं सुनहले जिल्द वाली किताबों का इन्तज़ार कर रहा था, उस समय मीष्का खलिहान के पास फ़सलों के बोझे लिये खड़ा रहता ...जाड़े की शाम को धुंधलका छाने लगता...अँधेरे आसमान से एकाकार हुए बीले खेतों के बीच, घाटी के निकट आश्रय लिये हुए गाँव पूरी तरह से नम और धूसर-सा था...भेड़-बकरियों को पुकारती औरतों की उर्र, उर्र, उर्र की आवाज़ सुनायी पड़ती...बाल्टी हिलाती उसकी माँ बर्फ़ीले पानी के लिये घाटी में जाया करती...

मीत्या बेसुध हो छात्र-जीवन की आरम्भिक संध्याओं की खुशियों का उपयोग करता रहा और तब तक मीष्का दुःख एवं परिवार से पीड़ित गृहस्थ तथा मज़दूर बन चुका था। जाड़े की जिन रातों में मीत्या बातों, धुएँ और शराबख़ाने की बोतलों के ढक्कनों के बीच गला फँस जाने की हद तक बहस करता या “दूर देश से, उस देश से..." गाता था, मीष्का अपनी गाड़ी ले शहर जाया करता था...अँधेरे में मजूदर लोग कमर भर बर्फ़ में घुसकर उजाला फूटने तक अनवरत चलते रहते । शराब की भट्टियों में

बर्फ की गाड़ियों पर पीपे लाद दिये जाते। कभी-कभी गाड़ियों की पूरी कतार रुक जाया करती...बर्फीली आँधी और हवा के बीच गाड़ीवानों के नामों की पुकार, गालियाँ सुनायी पड़तीं। मीष्का को रास्ता ढूँढते बर्फ़ के ढेरों पर चढ़ना पड़ता या सुन्न पड़ी उँगलियों तथा दाँतों से चिथड़े हो चुके बन्धन को खींचना पड़ता....

जब मीत्या स्कूली छात्र के रूप में छुट्टियों में आया करता, तब भी वह मीष्का के क़रीब था। वह उससे 'तुम' कहकर पुकारने की ज़िद करता, वे साथ-साथ बटेर पकड़ने जाते, जई के ढेरों के बीच मेड़ों पर लेट रात-रात भर घुल-घुल कर बातें करते। पर बाद में...

वोल्कोव ने अपने हाथों से चेहरे को ढक लिया। क़रीब तीन महीने पहले बड़े दिन के मौके पर मीष्का से अपनी अन्तिम मुलाकात की उसे याद आयी।

वोल्कोव गाँव आया हुआ था। चौबारे में अनेक मेहमान आये हुए थे। नववर्ष के दूसरे दिन अचानक शहर में थिएटर जाने की बात हो गयी और वे लोग रात को ही घोड़े गाड़ियों पर स्टेशन के लिए रवाना हो गये।

रात भयानक बर्फीली और तूफ़ानी थी। गाड़ी के नीचे की सूखी जमी बर्फ चरमरा और शोर मचा रही थी। निस्तब्ध और अदृश्य खेतों के पार खड़ा-सा लाल चन्द्रमा उग रहा था और उसके मद्धिम प्रकाश में दिख रहा था, किस तरह बर्फीली आँधी गरज

एवं धुआँ रही थीं। चुभती हवा से मुँह फेरकर वोल्कोव गाड़ियों की चीख सुन एवं सिगरेट पी रहा था। हवा लाल चिंगारियों को उड़ा और दूसरी गाड़ी की बातों के टुकड़ों, हँसी एवं ईंटों पर गुज़र रही दूसरी गाड़ियों की खड़खड़ाहट उसके कानों तक ला रही थी...कोई चिल्लाया... “रवाना", घोड़े छूट चले, हवा चेहरे पर बर्फ़ डालने और जम गये गिरेबान को झकझोरने लगी। वोल्कोव फर कोट को ठीक करने के लिए थोड़ा-सा उचका...उसके सामने बर्फ में पैदल, हिचकोले खाती कोई आकृति चमकी।

स्टेशन पर बहुत देर रुकना पड़ा और गाड़ी आने के पहले जब वोल्कोव टिकट लाने तृतीय श्रेणी के प्रतीक्षालय में गया तो वहाँ उसने उस आकृति को देखा।

-मीष्का! तुम? वोल्कोव अचकचा कर बोला।

और अचानक वह घटना घट गयी, जिसकी याद कर अब उसका दिल खून के आँसू रो रहा था। पहले के हँसमुख और चपल मीष्का ने जल्दी-जल्दी टोपी झुका ली तथा भयभीत एवं विनम्र स्वर में जवाब दिया-

-जी, मैं, दमीत्री प्येत्रोविछ...

वोल्कोव ने उसकी ओर हाथ बढ़ाते हुए उससे पूछा-तू यहाँ कैसे?

वह टूटी चप्पलें पहने हुए था और उसके दुर्बल, बीमार चेहरे को

ढाँपते हुए घर के बने कोट के कालरों के कोने भिखमंगों जैसे झाँक रहे थे।

मीष्का ने जुकाम से ग्रस्त भारी गले से जवाब दिया-शहर भीख माँगने।

-कैसी भीख?

-गाड़ी से...

-पर कैसी भीख माँगने?

मीष्का हौले से मुस्कुराया।

वह धीरे से बोला-मुफ्त में नहीं जाएगा।

वोल्कोव ने टिकट खरीद उसके हाथ में थमा दिया। मीष्का बिना टोपी के काफ़ी देर तक खड़ा निर्विकार टिकट को देखता रहा।

ट्रेन में फिर वोल्कोव को मीष्का की याद आयी और वह उसे ढूँढने चला। ज़बरदस्त ठण्डे और चलने पर चरमराने वाले डिब्बे में लाल तपे चूल्हे के नज़दीक उसने उसे देखा।

-तू शहर जा क्यों रहा है?

-दुर्भाग्यमीष्का नीरस स्वर में बोला-शहर में शायद कुछ मिल जाए...पेट एकदम ख़ाली है...

वोल्कोव फिर चिल्लाया...नहीं हो सकता! ऐसा नहीं हो सकता! ये संग्रह, वनस्पति संकलन...खाद्य चुक़न्दर...कैसी बेहूदगी है।...

और उँगलियों को भींचते हुए वह जोर से हँसने और दाँत-दर्द से पीड़ित व्यक्ति की भाँति हिलने लगा।

अनुवाद : सदाशिव खवाड़े